श्रीरामकृष्णदेव की वाणी

श्रीरामकृष्णदेव की वाणी

रामकृष्ण मठ

नागपुर

प्रस्तावना

(प्रथम संस्करण)

‘श्रीरामकृष्णदेव की वाणी’ यह नया प्रकाशन पाठकों के सम्मुख रखते हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही हैं। भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के उपदेश सार्वजनीन स्वरूप के हैं। मानवजीवन का अन्तिम लक्ष्य कौनसा है, जीवन सफल तथा कृतार्थ बनाने के लिए किन बातों की आवश्यकता है, इसके सम्बन्ध में उनकी वाणी सभी के लिए उपयुक्त तथा मार्गदर्शक है। उनके दिव्य जीवन तथा उनकी अमृतमयी वाणी का चिरस्थायी प्रभाव सभी के हृदय पर पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण मठ, मद्रास, द्वारा प्रकाशित “Thus Spake Sri Ramakrishna” इस मूल अंग्रेजी पुस्तक का प्रस्तुत पुस्तक अनुवाद है।

हमें विश्वास है कि इस प्रकाशन से पाठकों को विशेष लाभ होगा।

नागपुर

दि. १० मार्च १९७८

- प्रकाशक

श्रीरामकृष्ण

(१८३६-१८८६)

गदाधर का जन्म कलकत्ते से सत्तर मील दूर पश्चिम में कामारपुकुर ग्राम में १८ फरवरी, १८३६ ई. बुधवार को हुआ था। बाद में ये ही श्रीरामकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हुए। धार्मिकता, श्रद्धा एवं भक्तिपूर्ण सरल ग्रामीण वातावरण में लालित-पालित होने के कारण गदाधर के हृदय में बाल्यकाल से ही भगवान के दर्शन की तीव्र अभीप्सा थी। पढ़ने लिखने की ओर विशेष ध्यान न देकर वे साधु-संन्यासियों एवं तीर्थयात्रियों के बीच समय बिताते और अपने अन्य समवयस्क संगी-साथियों को लेकर धार्मिक नाटक खेला करते थे।

उपयुक्त शिक्षा की ओर उनका मन लगे इसके लिए गदाधर को सत्रह वर्ष की आयु में कलकत्ते लाया गया। परंतु गदाधर ने देखा कि सभी प्रकार से जागतिक ज्ञान का लक्ष्य केवल भौतिक उन्नति ही है। अतः उन्होंने मन ही मन संकल्प किया कि वे अपना जीवन केवल आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि में लगायेंगे जिससे शाश्वत शान्ति की प्राप्ति निश्चित रूप से हो सके।

अब परिस्थितियाँ कुछ इस प्रकार की होती गयीं कि अल्प समय के भीतर ही वे दक्षिणेश्वरस्थित कालीमन्दिर के पुजारी बन गये जिसे कलकत्ते की एक धनी एवं धार्मिक विधवा रानी रासमणि ने बनवाया था। भगवान् की पूजा करना उनकी रुचि का काम था, अतः उन्होंने अपने इस नये कार्य के कर्तव्यों को बड़ी उमंग तथा उत्साहपूर्वक अपना लिया। धीरे-धीरे उनकी पूजा-अर्चना माँ जगदम्बा के साक्षात् दर्शन के लिए एक उत्कट अभिलाषा के रूप में बदल गयी। वे

दिनरात प्रार्थना करते, ध्यान करते और माँ जगदम्बा के दर्शन के लिए फुट-फुटकर रोते। दिन के बीत जाने पर वे रो-रोकर कहते, "हे माँ, और एक दिन बीत गया और अभी भी मुझे तेरा साक्षात्कार नहीं हुआ।" वे बहुत कम भोजन करते और सोते प्रायः बिल्कुल नहीं थे। अन्ततः उन्हें भगवद्दर्शन प्राप्त हुआ।

श्रीरामकृष्णदेव अब कठोर आध्यात्मिक साधनाओं में लग गये और उन्होंने हिन्दू धर्म के विभिन्न पथों का अवलम्बन करते हुए तथा ईसाई धर्म एवं इस्लाम के नियमों का पालन करते हुए, सभी प्रकार से भगवान् का साक्षात्कार किया। इस प्रकार विभिन्न रूपों में भगवान् के साथ एकत्व का रसास्वादन श्रीरामकृष्ण ने किया - कभी तो अपने को अद्वैत में सम्पूर्ण रूप से लय करके, और कभी माँ जगदम्बा के शिशु सन्तान बनकर द्वैत के बाह्य रूप को रखते हुए। इन सब अनुभवों के बाद उन्होंने घोषणा की, "मैंने देखा है कि भगवान् एक ही हैं जिनकी ओर सभी (धर्म) अग्रसर हो रहे हैं।"

जिन दिनों श्रीरामकृष्ण इस आध्यात्मिक परमानन्द का अनुभव कर रहे थे तभी उनके गाँव कामारपुकुर में यह जनश्रुति पहुँच चुकी थी कि वे पागल हो गये हैं। उनके इस पागलपन को ठीक करने के लिए उनकी माता तथा बड़े भाई ने उनका विवाह सारदादेवी से करा दिया, जो अब श्री माँ सारदा के नाम से विख्यात हैं। किन्तु यह विवाह कैसा विचित्र था! श्रीरामकृष्ण वास्तव में उनको माँ जगदम्बा मानकर उनकी पूजा करते थे। एक बार श्रीरामकृष्ण की पदसेवा करते हुए सारदा ने उनसे पूछा था, "तुम मुझे किस दृष्टि से देखते हो?" श्रीरामकृष्ण ने उत्तर दिया था, "कालीमन्दिर में जो माँ है वह वही है जिसने इस (मेरे) शरीर को जन्म दिया है और जो अब नौबतखाने में वास करती है, और वही इस समय मेरी पदसेवा कर रही है। मैं वास्तव में तुम्हें आनन्दमयी माँ जगदम्बा के ही रूप में

देखता हूँ।" उन दोनों का मिलन केवल आध्यात्मिक स्तर पर ही रहा। तथापि श्रीरामकृष्ण ने सारदादेवी को गृहस्थी के सब कार्यों से लेकर ब्रह्मज्ञान तक सभी प्रकार की शिक्षा दी। आध्यात्मिक जीवन की सभी साधनाओं के विषय में उपदेश दिया। श्रीरामकृष्ण की ही तरह सारदादेवी भी पवित्रता से भी अधिक पवित्र थीं। वे मूर्तिमन्त सतीत्व थीं।

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे - "जब कमल खिलता है तब भ्रमर आप ही आप आ जाते हैं।" सभी प्रकार के, सभी धर्मों के अनुयायी स्त्री-पुरुष उनके पास आध्यात्मिक शान्ति पाने के लिये आते थे। जो भी सच्ची स्पृहा लेकर आता वह उनके असीम प्रेम का अनुभव करता था और उनके सान्निध्य तथा उपदेशों के द्वारा आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त करता था। उनका महाप्रयाण १६ अगस्त १८८६ को हुआ। किन्तु इसके पूर्व ही उन्होंने नवयुवकों के एक दल का अपने आध्यात्मिक उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए विशेष रूप से शिक्षित कर दिया था। श्रीरामकृष्णदेव के महाप्रयाण के बाद इन नवयुवकों ने संसार त्याग दिया और उनके नाम पर एक साधु-संघ का गठन किया जिसका उद्देश्य था "अपनी व्यक्तिगत मुक्ति तथा समस्त जगत् का हित।" इनमें सब से अधिक गतिशील तथा तेजस्वी थे स्वामी विवेकानन्द जिनके नेतृत्व में उन सब ने श्रीरामकृष्ण के सन्देश का भारत तथा अन्य देशों में प्रचार किया।

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्मस्वरूपिणे।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ॥

- धर्म के प्रतिष्ठाता, सर्वधर्मस्वरूप, सब अवतारों में श्रेष्ठ, हे रामकृष्ण, तुम्हें प्रणाम।

भगवान्

* रात्रि के समय तुम आकाश में अनेक नक्षत्र देखते हो, परन्तु सूर्योदय होने पर नहीं देखते। तो क्या इसी कारण तुम कह सकते हो कि दिन के समय आकाश में नक्षत्र नहीं होते? हे मानव, चूँकि तुम अपनी अज्ञान-अवस्था में भगवान् को देख नहीं पाते, इसी कारण यह न कहो कि भगवान् नहीं हैं।

* भगवान् के असंख्य नाम और अनन्त रूप हैं जिनके माध्यम से उनके निकट पहुँचा जा सकता है। जिस किसी भी नाम और रूप में उनकी पूजा करोगे, उसी के माध्यम से उन्हें प्राप्त कर लोगे।

* सत्य एक ही है, अन्तर है नाम और रूप का। एक ही जलाशय के तीन या चार घाट हैं। पर हिन्दू पानी पीते हैं - उसे 'जल' कहते हैं। दूसरे पर मुसलमान उसी को 'पानी' कहते हैं। और अंग्रेज तीसरे पर उसी को 'वॉटर' कहते हैं। तीनों का तात्पर्य एक ही वस्तु से है, भेद केवल नाम का है। इसी प्रकार कुछ लोग सत्य को 'अल्लाह' के नाम से पुकारते हैं, कुछ 'गॉड' कहकर, कुछ लोग 'ब्रह्म' कहकर, कुछ 'काली' कहकर, तो कुछ लोग 'राम', 'ईसा', 'दुर्गा' तथा 'हरि' नाम लेकर पुकारते हैं।

कोई भी निश्चित रूप से यह नही कह सकता कि भगवान् केवल 'यह' हैं, और कुछ नहीं। वे निराकार हैं, और फिर साकार भी। भक्तों के लिये वे रूप धारण करते हैं। किन्तु ज्ञानी की दृष्टि में वे अरूप ही हैं। जानते हो, यह किस प्रकार है? सच्चिदानन्द परब्रह्म एक अनन्त समुद्र के समान है। तेज ठण्डक के कारण समुद्र में यत्र तत्र बर्फ की चट्टानें तैयार हो जाती हैं। इसी प्रकार मानो अपने

उपासकों की भक्ति की शीतलता के प्रभाव से अनन्त अपने को सान्त में रूपान्तरित करता है और उपासकों के सम्मुख साकार भगवान के रूप में प्रकट होता है। दूसरे शब्दों में, भगवान् अपने भक्तों के सम्मुख शरीरधारी व्यक्ति के रूप में प्रकट होते हैं। पुनः जिस प्रकार सूर्योदय होने पर समुद्र के ऊपर की बर्फ पिघल जातीं है उसी प्रकार ज्ञान का उदय होने पर देहधारी भगवान् फिर से अनन्त एवं निराकार ब्रह्म में लय हो जाते हैं। तब साधक को ऐसा अनुभव नहीं होता कि भगवान् एक व्यक्ति हैं, और न तब भगवान् के रूप ही दिखाई देते हैं। परन्तु यह ध्यान रखो कि साकार एवं निराकार दोनों एक ही सत्य के दो पक्ष हैं।

* एक बार एक मनुष्य जंगल में गया। वहाँ उसने एक वृक्ष पर एक सुन्दर प्राणी देखा। बाद में उसने उसके विषय में एक मित्र से बताया और कहा, "भाई, जंगल में एक वृक्ष पर मैंने एक लाल रंग का प्राणी देखा।" मित्र बोला, "मैंने भी उसे देखा है। तुम उसे लाल क्यों कहते हो? वह तो हरा है।" एक तीसरे व्यक्ति ने कहा, "अरे नहीं नहीं, तुम उसे हरा क्यों कहते हो? वह तो पीला है।" इसके बाद अन्य लोग उस जन्तु को बैंगनी, नीला या काला कहकर वर्णन करने लगे। अब इस रंग की बात को लेकर उनमें झगड़ा होने लगा। अन्त में वे उस वृक्ष के पास पहुँचे और उन्होंने एक व्यक्ति को उसके नीचे बैठा देखा। उनके प्रश्नों के उत्तर में उसने कहा, "मैं इसी वृक्ष के नीचे रहता हूँ और उस जन्तु को खूब अच्छी तरह जानता हूँ। तुम लोग उसके विषय में जो कुछ कह रहे हो वह सब सत्य है। कभी वह लाल होता है, कभी हरा, कभी पीला, कभी नीला और कभी अन्यान्य रंगों का। वह गिरगिट है। कभी कभी मैं देखता हूँ कि उसका कोई भी रंग नहीं है।"

इसी प्रकार जो निरन्तर भगवान् का चिन्तन करता है वह उनके रूपों

तथा अवस्थाओं को जान सकता है। भगवान् के अपने गुण हैं, साथ ही वे निर्गुण भी हैं। केवल वही व्यक्ति, जो वृक्ष के नीचे रहता है, जानता है कि गिरगिट विभिन्न रंगो में दिखाई दे सकता है, और कभी कभी एकदम रंगहीन हो जाता है। दूसरे लोग, जो पूरे सत्य को नहीं जानते, परस्पर झगड़ा करते रहते हैं और कष्ट पाते हैं।

* भगवान् निराकार हैं, और साकार भी। फिर वे इन दोनों अवस्थाओं के परे जो है, वह भी हैं। केवल वे ही स्वयं जानते हैं कि वे क्या क्या हैं। जो लोग उनसे प्रेम करते हैं उनके लिये वे नाना प्रकार से नाना रूपों में स्वयं को व्यक्त करते हैं। किन्तु निश्चय ही वे साकार अथवा निराकार की सीमा से आबद्ध नहीं हैं।

* भगवान् साकार हैं, साथ ही निराकार भी। एक बार एक संन्यासी जगन्नाथ-मन्दिर में आया। जगन्नाथजी की मूर्ति को देखते हुए वह मन ही मन तर्क करने लगा कि भगवान् साकार हैं अथवा निराकार। उसने अपनी लाठी को बायें से दायें घुमाया - यह देखने के लिए कि वह मूर्ति को स्पर्श करती है अथवा नहीं। लाठी ने कुछ भी स्पर्श नहीं किया। उसने समझ लिया कि उसके सामने कोई मूर्ति नहीं है, और वह इस सिद्धान्त पर आया कि भगवान् निराकार हैं। दूसरी बार लाठी को दायें से बायें घुमाया। इस बार लाठी ने मूर्ति का स्पर्श किया। संन्यासी ने समझ लिया कि भगवान् के रूप हैं। इस प्रकार उसने अनुभव कर लिया कि भगवान् साकार भी हैं और निराकार भी।

* अग्नि के कोई एक आकार नहीं है, परन्तु जलते अंगारों के रूप में उसके विभिन्न आकार हो जाते हैं। इस तरह निराकार अग्नि आकारयुक्त दिखाई देती है। इसी प्रकार निराकार भगवान् भी नाना स्थूल रूप धारण कर लेते हैं।

* सूर्य पृथ्वी से कई गुना बड़ा है परन्तु बहुत दूर होने के कारण वह केवल एक थाली जैसा प्रतीत होता है। इसी प्रकार भगवान् अनन्त हैं, किन्तु उनसे बहुत दूर होने के कारण हम उनकी वास्तविक महिमा का अनुभव नहीं कर पाते।

* निर्गुण और सगुण - ब्रह्म और शक्ति - इन दोनों में कोई भेद नहीं है। दोनों एक ही हैं। भगवान् जब निष्क्रिय अवस्था में होते हैं, अर्थात् जब वे सृष्टि, स्थिति एवं संहार के कार्य में रत नहीं रहते तब हम उन्हें ब्रह्म कहते हैं। किन्तु जब वे इन कार्यकलापों में लगे रहते हैं तब हम उन्हें काली अथवा शक्ति कहते हैं।

* जिस प्रकार एक ही सब्जी को उबालकर, तलकर, सूखी या रसेदार सब्जी बनाकर खाया जा सकता है और प्रत्येक व्यक्ति की अपनी अलगअलग पसंद होती है, उस प्रकार विश्वनियन्ता ईश्वर एक होते हुए भी अपने उपासकों की विभिन्न रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होते हैं। प्रत्येक साधक की भगवान् के विषय में अपनी धारणा होती है जिसे वह सब से अधिक मूल्य देता है। किसी की दृष्टि में वे दयालु स्वामी हैं अथवा वात्सल्यपूर्ण पिता या मधुरहासिनी माँ हैं, किसी की दृष्टि में वे सुहृत् सखा हैं तो किसी के लिए वे धर्मपरायण पति अथवा कर्तव्यनिष्ठ एवं आज्ञाकारी पुत्र हैं।

* भगवान् चीनी के पर्वत के समान हैं। एक छोटी चींटी उसमें से चीनी का एक छोटा कण ले जाती हैं, तथा उससे बड़ी चींटी कुछ बड़ा कण। किन्तु फिर भी चीनी का पर्वत जैसा का वैसा ही बना रहता है। भगवान् के भक्त चींटियों के समान हैं। भगवान् के एक ही दिव्य भाव को पा वे आनन्द में विभोर हो जाते हैं। उनके समस्त ऐश्वर्यों एवं भावों की कोई भी अपने भीतर धारणा नहीं कर सकता।

* जिस प्रकार सीसे का टुकड़ा पारे के पात्र में पड़ने पर शीघ्र ही उसमें घुल जाता है, उसी प्रकार जीवात्मा जब ब्रह्मसमुद्र में गिरता है तो अपने सीमित अस्तित्व को खो उस समुद्र में गलकर समा जाता है।

* जल और जल का बुलबुला वस्तुतः एक ही हैं। बुलबुला जल से ही उत्पन्न होता है, जल ही पर रहता है और अन्त में जल ही में समा जाता है। उसी प्रकार जीवात्मा तथा परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं। उनमें भेद केवल उपाधि के तारतम्य का है; एक पराधीन है, दूसरा स्वाधीन।

* ईश्वर और जीव का सम्बन्ध वैसा ही है जैसा चुम्बक और लोहे का। तब फिर ईश्वर जीव को आकर्षित क्यों नहीं करते? जिस प्रकार अत्यधिक कीचड़ में लिपटा हुआ लोहा चुम्बक के द्वारा आकर्षित नहीं होता, उसी प्रकार अत्यधिक माया में लिप्त जीव ईश्वर के आकर्षण का अनुभव नहीं करता। किन्तु जिस प्रकार पानी से कीचड़ के धुल जाने पर लोहा चुम्बक की ओर खिंचने लगता है उसी प्रकार अविरत प्रार्थना तथा पश्चात्ताप के अश्रुओं द्वारा संसारबन्धन में डालनेवाली माया का वह कीचड़ जब धुल जाता है, तो जीव शीघ्र ही ईश्वर की ओर आकर्षित होने लगता है।

भगवत्-प्राप्ति का उपाय

* इस दुर्लभ मानव-जन्म को पाकर भी जो इसी जीवन में भगवान् को पाने की चेष्टा नहीं करता उसका जन्म वृथा है।

* भगवान् का नाम रटो, उनका गुणगान करो, सत्संग करो। बीच बीच में भगवान् के भक्तों तथा साधुपुरुषों के दर्शन करो। मनुष्य का मन यदि दिनरात दुनियादारी, सांसारिक कर्तव्यों और दायित्वों में लगा रहे तो वह भगवान् का चिन्तन नहीं कर सकता; कभी कभी एकान्त में जाना और भगवान् का चिन्तन करना अत्यावश्यक है।

* सत्य और असत्य का विवेक सदा करना चाहिये। केवल भगवान् ही सत्य हैं, वे ही नित्य वस्तु हैं, बाकी सभी कुछ असत्य है, अनित्य है। इस प्रकार के विवेक द्वारा अपने मन से अनित्य वस्तुओं को झाड़ फेंकना चाहिए।

* तात्पर्य यह है कि भगवान् से वैसा ही प्रेम करना चाहिये जैसा माँ अपने बच्चे से, सती स्त्री अपने पति से और संसारी मनुष्य अपनी धन-दौलत से करता है। प्रेम की, आकर्षण की इन तीनों शक्तियों को मिलाकर भगवान् की ओर लगाओ। तुम निश्चित ही उनके दर्शन पाओगे।

* इस दिव्य प्रेम को प्राप्त करने के लिए एकान्त में जाना अत्यावश्यक है। दूध से मक्खन निकालना हो तो उसे एकान्त में रखकर दही जमाना पड़ता है; यदि उसे बहुत अधिक हिलाया डुलाया जाय तो दही नहीं जम पाता। इसके बाद और सब काम छोड़कर एक शान्त स्थान में बैठकर दही को मथना पड़ता है। तब कहीं

मक्खन मिलता है। इसी प्रकार एकान्त में बैठकर भगवान् का ध्यान करने से ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की प्राप्ति होती है।

* जब तक लज्जा, घृणा और भय, ये तीनों विद्यमान हैं तब तक भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते।

* तराजू का भारी पल्ला नीचे की ओर तथा हलका पल्ला ऊपर की ओर जाता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति सांसारिक चिन्ताओं से भाराक्रान्त है वह संसार ही में डूब जाता है तथा जो व्यक्ति कम चिन्ता करता है, वह भगवान् के चरणों में उठ जाता है।

* भगवान् के लिए व्याकुलता किस प्रकार की होनी चाहिए? जब किसी व्यक्ति की नौकरी छूट जाती है और वह नौकरी की खोज में एक दफ्तर से दूसरे दफ्तर भटकता फिरता है तब उसमें जैसी व्याकुलता होती है वैसी।

* आध्यात्मिक जीवन में व्याकुलता के बिना कुछ भी प्राप्त नहीं होता। साधुसंग निरन्तर करते रहने से हृदय में भगवान् के लिए व्याकुलता उत्पन्न होती है। यह व्याकुलता उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था के समान होती है जिसके परिवार में कोई बीमार हो जाता है। उसका मन निरन्तर व्याकुल रहता है और वह यही चिन्ता करता रहता है कि बीमार किस प्रकार अच्छा हो जाय।

* जो भगवान् के लिए व्याकुल होता है वह खानेपीने जैसी तुच्छ बातों पर बहुत ध्यान नहीं देता।

* यदि कोई व्यक्ति सतत बारह वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करे तो उसकी मेधानाड़ी खुल जाती है। अर्थात् उसकी प्रज्ञाशक्ति खुल जाती है। तब उसकी बुद्धि सूक्ष्म से सूक्ष्म विचारों में प्रवेश करने और उन्हें ग्रहण करने में समर्थ हो जाती है। ऐसी ही बुद्धि होने पर मनुष्य

भगवान की प्राप्ति कर सकता है। केवल इसी प्रकार की विशुद्ध बुद्धि के द्वारा भगवत्प्राप्ति हो सकती है।

* सन्तान नहीं होती इसलिए लोग आँसुओं की झड़ी लगा देते हैं, धन की प्राप्ति नहीं होती इसलिए वे कितना दुःख करते रहते हैं। किन्तु ऐसे लोग कितने हैं जो भगवान् के दर्शन नहीं मिले इसलिए दुःखी होते और रोते हैं? जो सचमुच ही उन्हे चाहता है, उनके लिए रोता है, वह उन्हें अवश्य पाता है।

* जैसा बच्चा खिलौने और पैसे के लिए अपनी माँ की चिरौरी करता है, उसे तंग करता है और रोता पीटता है वैसे ही जो व्यक्ति भगवान् को अपने से अधिक अपना जानकर उन्हें देखने के लिए सरल बालक की भाँति व्याकुल होकर अन्तर से रोता है उसे अन्त में उनके दिव्यदर्शन का लाभ होता है। ऐसे सच्चे और आग्रही साधक से भगवान् छिपकर रह नहीं सकते।

* 'मुझे इसी जीवन में भगवान् को पाना है', 'हाँ, तीन दिन के भीतर मुझे उनको पाना ही है', 'नहीं, केवल एकबार उनका नाम लेकर मैं उन्हें अपने निकट खींच लाऊँगा' - इस प्रकार के प्रबल प्रेम के द्वारा भक्त भगवान् को आकर्षित कर सकता है, और शीघ्र प्राप्त कर सकता है। किन्तु जिन भक्तों का प्रेम मन्द है वे यदि कभी भगवान् को पायेंगे भी तो उसमें युग युग लग जाते हैं।

* यदि भगवान् सर्वव्यापक हैं तो हमें वे क्यों नहीं दिखते? जिस तालाब के ऊपर काई जमी रहती है उसे देखने पर पानी दिखाई नहीं देता। यदि तुम पानी देखना चाहो तो काई को सतह से हटा दो। माया के परदों से ढकी आँखे लेकर तुम शिकायत करते हो कि भगवान् दिखाई नहीं देते। यदि तुम उन्हें देखना चाहते हो तो अपनी आँखों से माया के परदे को हटा दो।

* मनुष्य को कर्म करना ही होगा। तभी वह भगवान् के दर्शन पा सकता है। कर्म किये बिना भक्ति नहीं हो सकती, न उनके दर्शन ही हो सकते हैं। कर्म का अर्थ है ध्यान, जप इत्यादि। भगवान् का नामगुणकीर्तन करना भी कर्म है। दान, यज्ञ ये सब भी कर्म ही हैं।

* यदि दर्पण धूल से ढका हो तो उसमें चेहरा दिखाई नहीं देता। हृदय के शुद्ध होने पर भक्ति की प्राप्ति होती है। तभी भगवान् की कृपा से उनके दर्शन होते हैं। उनका नाम जपते हुए अपने देह और मन को शुद्ध बनाओ। उनका पावन नामगुणगान गाते हुए अपनी जिह्वा को पवित्र करो।

* जिस समय तुम साधक अवस्था में हो उस समय उन लोगों से दूर रहो जो दूसरों को साधन-भजन करते देख उनकी हँसी उड़ाते हैं और जो धर्म तथा धार्मिक लोगों की निन्दा करते हैं।

* कुतुबनुमा का काँटा सदा उत्तर की ओर संकेत करता है, इसी कारण समुद्र में जहाज अपनी दिशा को नहीं खोता। इसी प्रकार यदि मनुष्य का हृदय भगवान् की ओर लगा रहे तो वह इस संसारसमुद्र में लक्ष्य को नहीं खोता।

* एक बगुला मछली पकड़ने के लिए धीरे धीरे तालाब के किनारे की ओर बढ़ रहा था। उसके पीछे से एक व्याध उसे लक्ष्य बनाये उस पर निशाना लगा रहा था, किन्तु बगुले का उस ओर बिल्कुल ध्यान नहीं था। अवधूत ने यह देखकर बगुले को प्रणाम किया और कहा, 'जब मैं ध्यान में बैठूँ तो तुम्हारी ही तरह मैं कभी पीछे मुड़कर न देखूँ कि मेरे पीछे क्या है।'

* सांसारिक वस्तुओं के प्रति तनिक भी मोह के रहते भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। धागे में यदि एक छोटा सा रेशा भी बाहर निकला

रहे तो वह सुई के छेद के भीतर नहीं जा सकता।

* जिस प्रकार पोटली फटकर सरसों के दाने यदि चारों ओर बिखर जाएँ तो उन्हें बटोरना बड़ा कठिन हो जाता है उसी प्रकार सांसारिक वस्तुओं के पीछे इधर उधर दौड़नेवाले मन को अन्तर्मुख तथा एकाग्र करना भी अत्यन्त कठिन है।

* साधुसंग धर्मसाधना का एक प्रधान अंग है।

* जब मनुष्य नीचे लिखे तीन भावों में से किसी एक में प्रतिष्ठित हो जाता है तभी वह भगवान् को पाता है : (१) यह सब कुछ मैं हूँ, (२) यह सब कुछ तू है, (३) तू प्रभु है और मैं दास हूँ।

* जिस प्रकार बाघ दूसरे पशुओं को खा डालता है उसी प्रकार भगवत्-अनुरागरूपी बाघ काम, क्रोध तथा अन्य विकारों को खा जाता है। एक बार जब हृदय में यह अनुराग उदित होता है तब कामादि विकार नष्ट हो जाते हैं।

* तोते के गले में कण्ठी निकल जाने पर उसे पढ़ाया नहीं जा सकता। बचपन में ही उसे पढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार बुढ़ापे में मन को भगवान् की ओर लगाना कठिन हो जाता है। युवावस्था में यह सरलता से हो सकता है।

* जब किसी वस्तु के लिए आन्तरिकता के साथ मन और मुख एक करके प्रार्थना की जाती है तब वह प्रार्थना भगवान् सुनते हैं। पर जो मुँह से तो कहता है, 'हे प्रभो, यह सब तेरा हैं' पर मन ही मन सोचता है कि 'यह सब कुछ मेरा है' उसकी प्रार्थना का कोई फल नहीं होता।

* तुम्हारे भावों में किसी प्रकार छल-कपट न हो। दिल के सच्चे,

निष्कपट बनो, मन-मुख एक करो। तुम अवश्य सफल होओगे। सच्चे और सरल हृदय से प्रार्थना करो, वे तुम्हारी प्रार्थना अवश्य सुनेंगे।

* राजा के पास पहुँचना हो तो द्वारपाल तथा प्रहरी आदि कर्मचारियों को सन्तुष्ट करना पड़ता है। उसी प्रकार राजाधिराज ईश्वर के पास पहुँचने तथा उनकी कृपा प्राप्त करने के लिए साधन-भजन, भक्तसेवा तथा साधुसंग यह खूब करना पड़ता है।

* विषयचिन्तन तथा सांसारिक दुश्चिन्ताओं से मन को अस्थिर न होने दो। जो कुछ करना आवश्यक हो उसे ठीक समय पर करो और मन को सदा भगवान् में मग्न रखो।

* जगदम्बा से अचल भक्ति तथा दृढ़ विश्वास के लिए प्रार्थना करो।

* एक बार नारद के स्तव से प्रसन्न हो भगवान् राम ने उनसे वर माँगने को कहा। नारद ने कहा, 'हे राम, मुझे तुम्हारे चरणों में शुद्ध भक्ति दो और यह करो कि तुम्हारी भुवनमोहिनी माया से मैं मुग्ध न होऊँ।' राम ने कहा, 'तथास्तु। कुछ और माँगो।' नारद बोले, 'मैं और कुछ नहीं चाहता। मैं केवल शुद्ध भक्ति चाहता हूँ।'

* जो अपने अन्तःकरण से भगवान को चाहता है, वह निश्चित ही उन्हें पायेगा। जो भगवान् के लिए व्याकुल है और उन्हें छोड़ दुसरा कुछ नहीं चाहता, वह उन्हें अवश्य प्राप्त करेगा।

* हृदय की तीव्र व्याकुलता के साथ क्या तुम उनके लिए रो सकते हो? लोग स्त्री, पुत्र या धन के लिए कितना रोते हैं। परन्तु भगवान् के लिए कौन रोता है? जब तक बच्चा खिलौने लेकर खेलने में मग्न रहता है तब तक उसकी माँ रसोई पकाने तथा गृहस्थी के अन्य काम करने में लगी रहती है। किन्तु जब बच्चा खेलने से ऊब जाता है और

खिलौने फेंककर अपनी माँ के लिए रोने लगता है तब माँ भात की हाँड़ी चूल्हे पर से उतार देती है और जल्दी से दौड़ती हुई बच्चे को गोद में उठा लेती है।

* सच्चाई और सरलता के बिना भगवान् को नहीं पाया जा सकता। कुटिल हृदय से भगवान बहुत दूर रहते हैं।

* प्रश्न :- भक्ति कैसे प्राप्त होती है?

उत्तर :- व्याकुलता के द्वारा - जैसी व्याकुलता बच्चा अपनी माँ के लिए अनुभव करता है। जब बच्चा माँ से अलग हो जाता है तब वह घबड़ा जाता है और व्याकुल होकर माँ के लिए रोने लगता है। इसी प्रकार यदि कोई भगवान् के लिए रोये तो उसे उनके दर्शन हो सकते हैं।

* एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा, 'गुरुदेव बताइए, मुझे भगवान् के दर्शन कैसे हों?' गुरु ने उत्तर दिया - 'आओ, मेरे साथ। मैं तुम्हें बतलाता हूँ। वे उसे एक झील के किनारे ले गये और उसे लेकर पानी में उतरे। एकाएक गुरु ने शिष्य का सिर पकड़कर पानी में डुबो दिया। कुछ क्षण उसे पानी में डुबो रखने के बाद उन्होंने उसे छोड़ दिया। शिष्य झट उठ खड़ा हो गया। गुरु ने पूछा, 'कहो कैसा लगा?' शिष्य ने कहा 'ओह, ऐसा लगा कि मैं मर रहा हूँ, मैं साँस लेने के लिए छटपटा रहा था।' गुरु ने कहा, 'जब तुम भगवान् के लिए इसी प्रकार छटपट करोगे तो जान लेना कि उनके दर्शन में बहुत देर नहीं है।'

* बड़ी मछली पकड़ने के लिए लोग पानी में बंसी डाल कर घण्टों शान्त बैठे रहते हैं। इसी प्रकार जो भक्त धैर्यपूर्वक साधन-भजन में लगा रहता है वह अन्त में निश्चित ही भगवान को पा लेता है।

* इस संसारसमुद्र में काम, क्रोध आदि छह घड़ियाल रहते हैं। किन्तु यदि तुम अपने शरीर पर हल्दी मलकर जल में उतरो तो तुम्हें उनसे भय नहीं रहेगा। विवेक तथा वैराग्य ही वह हल्दी है।

* प्रश्न:-काम पर किस प्रकार विजय प्राप्त की जाय?

उत्तर :- सभी स्त्रियों को अपनी माता की तरह देखो, स्त्री के चेहरे की ओर कभी न देखो, सदा उसके पैरों कि ओर दृष्टि रखो। ऐसा करने पर सभी बुरे विचार भाग जायेंगे।

* सभी स्त्रियां भगवती जगज्जननी का अंश हैं। उन्हें माता की दृष्टि से देखना चाहिए।

* प्रश्न :- हम अपनी दुर्बलता पर कैसे विजय पा सकते हैं?

उत्तर :- जब फूल से फल तैयार होने लगता है तब पँखुड़ियाँ अपने आप झड़ जाती हैं। इसी प्रकार जब तुम्हारे भीतर दिव्य भाव की वृद्धि होगी तब तुम्हारी मानवी दुर्बलताएँ अपने आप नष्ट हो जायेंगी।

* जो भगवान् को पाना चाहते हैं अथवा साधन-भजन में उन्नति करना चाहते हैं, उन्हे स्वयं को कामिनीकांचन के आकर्षण से विशेष रूप से बचाकर चलना चाहिए। अन्यथा उन्हें सिद्धि कभी प्राप्त नहीं होगी।

* जब मन विषयासक्ति से मुक्त हो जाता है तब वह भगवान् की ओर जाता है और उन्ही में स्थित हो जाता है। बद्ध जीव इसी प्रकार मुक्त हो जाता है। बद्ध जीव वह है जो भगवान् से दूर ले जानेवाले मार्ग पर चलता है।

* किसी का दोष मत देखो - एक कीड़े का भी नहीं। जिस प्रकार

तुम भगवान् से भक्ति के लिए प्रार्थना करते हो उसी प्रकार इसके लिए भी प्रार्थना करो कि तुम किसी का दोष न देखो।

* मन ढोंगी, हिसाबी और तार्किक होता है। वह भगवान् को नहीं पा सकता। मन में विश्वास तथा सचाई होनी चाहिए। सच्चे हृदय के मनुष्य के लिए भगवान् बहुत निकट हैं, किन्तु कपटी मनुष्य से वे बहुत दूर रहते हैं।

* जब तुम देखो कि भगवान् का नाम सुनते ही तुम्हारी आँखो में आँसू आ जाते हैं और शरीर में रोमांच हो उठता है तब जान लो कि तुम कामिनी और कांचन की आसक्ति से मुक्त हो गये हो और तुमने भगवान् को पा लिया है।

* तुम राधा और कृष्ण को मानो या न मानो, किन्तु उनके एक दूसरे के प्रति आकर्षण को अवश्य स्वीकार करो। अपने हृदय में भगवान् के लिए उसी प्रकार की व्याकुलता लाने का प्रयत्न करो। उन्हें प्राप्त करने के लिए केवल व्याकुलता की आवश्यकता है।

* भगवान् तक पहुँचने के लिए बहुतसे पथ हैं। प्रत्येक मत एक पथ है। यह वैसा ही है, जैसा कालीमन्दिर में पहुँचने के लिए अनेक रास्ते हैं, किन्तु यह अवश्य मानना पड़ेगा कि कुछ रास्ते साफ-सुथरे हैं तो कुछ गन्दे। साफ-सुथरे रास्ते से जाना ही अच्छा है।

* तुम भगवान् के जितने निकट पहुँचोगे उतना ही शान्ति का अनुभव करोगे। शान्ति, शान्ति, चरम शान्ति। तुम जितना ही गंगा के निकट पहुँचते हो उतना ही तुम्हें गंगा की शीतलता का अनुभव होता है और जब गंगा के जल में डूबकी लगाते हो तब पूर्ण रूप से शीतल हो जाते हो।

ज्ञान

* ज्ञानी ज्ञानमार्ग पर चलता हुआ सत्य के विषय में सदा 'नेति नेति' (यह नहीं है, यह नहीं है) विचार करता रहता है। ब्रह्म 'यह' नहीं है, 'वह' नहीं है। वह जगत नहीं है, जीव नहीं है। इस प्रकार विचार करते हुए मन स्थिर हो जाता है। फिर वह (मन) लीन हो जाता है और साधक समाधि में मग्न हो जाता है।

* 'मैं कौन हूँ', इसका भली भाँति विचार करने पर दिखाई देता है कि मैं नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। एक प्याज लो और उसके छिलकों को अलग करते जाओ। पहले बाहरी लाल छिलके, फिर मोटे सफेद छिलके मिलेंगे। इन्हें भी एक एक करके निकालते जाओ। अन्त में तुम्हें कुछ भी नहीं मिलेगा। उस अवस्था में फिर मनुष्य को अपने अहं का अस्तित्व ही नहीं मिलता और तब उसे ढूँढ़नेवाला ही कहाँ रह जाता है? उस अवस्था में उसे अपने शुद्ध बोध में ब्रह्म के यथार्थ स्वरूप का जो अनुभव होता है, उसका वर्णन कौन कर सकता है?

* जब तक भगवान् बाहर तथा दूर प्रतीत होते हैं तब तक अज्ञान है। परन्तु जब अपने अन्तर में उनका अनुभव होता है तब यथार्थ ज्ञान का उदय होता है। जो उन्हें अपने हृदय मन्दिर में देखता है वह उन्हें जगत्मन्दिर में भी देखता है। जब तक आदमी समझता है कि भगवान् 'वहाँ' हैं तब तक वह अज्ञानी है। परन्तु जब वह अनुभव करता है कि भगवान् 'यहाँ' है तभी उसे ज्ञान प्राप्त होता है।

* एक व्यक्ति ने श्रीरामकृष्ण से कहा, 'कृपया मुझे ऐसा उपदेश दीजिए कि एक ही बात से मुझमें ज्ञान आ जाए। उन्होंने उत्तर दिया,

‘ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या, इसकी धारणा करो और चूप होकर बैठे रहो।’

* इस कलियुग में ज्ञानयोग की साधना बड़ी कठिन है। एक तो मनुष्य का जीवन पूरी तरह से अन्न पर ही निर्भर करता है। दूसरे उसकी आयु भी बहुत कम है। तीसरे उसकी देहात्मबुद्धि किसी हालत में नहीं जाना चाहती। देहात्मबुद्धि के नष्ट हुए बिना ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना असम्भव है।

* सर्वोच्च ज्ञान क्या है? ज्ञानी कहता है, ‘हे प्रभो, समस्त संसार में केवल तुम्ही एकमात्र कर्ता हो। मैं तुम्हारे हाथों का एक क्षुद्र यन्त्र मात्र हूँ। मेरा कुछ भी नहीं। सब कुछ तुम्हारा है। मैं, मेरा परिवार, मेरा धन, मेरे गुण - सब कुछ तुम्हारा है।’

* घर का मालिक एक अँधेरे कमरे में सो रहा है। उसे ढूँढ़ने के लिए कोई अँधेरे में टटोलता फिरता है। वह खाट छूता है और कहता है, ‘नहीं, यह वह नहीं है।’ वह खिड़की छूता है और कहता है, ‘नहीं, यह वह नहीं है।’ वह दरवाजा छूता है और कहता है, ‘नहीं, यह वह नहीं है।’ वेदान्त में इस प्रक्रिया को नेति नेति (‘यह नहीं’, ‘यह नहीं’) कहते हैं। अन्त में उसका हाथ मालिक पर पड़ जाता है और वह एकदम कह उठता है, ‘यह है’। दूसरे शब्दों में, अब उसे मालिक के अस्तित्व का ज्ञान हो गया है। उसने उसे पा लिया है, परन्तु अभी भी वह उसे घनिष्ठ रूप से नहीं जान पाया है।

* मैंने देखा है कि युक्ति-विचार के द्वारा जो ज्ञान होता है वह एक किस्म का होता है और ध्यान के द्वारा जो ज्ञान होता है वह और एक किस्म का होता है। फिर भगवान् के साक्षात्कार से जो ज्ञान होता है वह कुछ और ही है।

* ज्ञान एकत्व की ओर ले जाता है, अज्ञान नानात्व की ओर।

* ज्ञानयोगी कहता है, 'सोहम्' (मैं वह हूँ) किन्तु जब तक देहात्मबुद्धि है तब तक यह 'सोहम्' भाव हानिकारक है। इससे उन्नति नहीं होती बल्कि पतन ही होता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं को तथा दूसरों को धोखा देता है।

* निम्नश्रेणी का भक्त कहता है, 'भगवान् हैं, किन्तु वे बड़ी दूर स्वर्ग में हैं।' मध्यम श्रेणी का भक्त कहता है, 'भगवान् सभी जीवों में प्राण एवं चैतन्य के रूप में हैं।' उत्तम श्रेणी का भक्त कहता है, 'भगवान् स्वयं ही सब कुछ बने हुए हैं, मैं जो कुछ देखता हूँ वह भगवान् का एक रूप मात्र हैं। एकमात्र वे ही माया, जगत् एवं समस्त जीव बने हैं। भगवान् को छोड़ और कुछ है ही नहीं।'

भक्ति

* भक्ति का अर्थ है भगवान् के प्रति अनन्य प्रेम - जिस प्रकार का प्रेम पत्नी अपने पति के प्रति अनुभव करती है। भगवान् के प्रति विशुद्ध भक्ति होना बड़ा कठिन है। ऐसी ही भक्ति के द्वारा मनुष्य के मन-प्राण भगवान् में विलीन हो जाते हैं।

* प्रेम का अर्थ है भगवान् के प्रति ऐसा प्यार कि जिसमें मनुष्य सारे जगत् को भूल जाता है और साथ ही अपना शरीर, जो इतना प्रिय है, उसे भी भूल जाता है। चैतन्यदेव के अन्दर प्रेम उदित हुआ था।

* यदि तुम्हारे भीतर रागा-भक्ति अर्थात् भगवान् के प्रति प्रबल आसक्ति का उदय हो तो वे स्थिर नहीं रह सकते। जानते हो, भगवान् को अपने भक्तों का प्रेम कितना प्रिय है? जैसे खली मिला हुआ भुसा गाय को प्रिय होता है। इतना प्रिय कि गाय उसे लालच के साथ निगलती चली जाती है।

* याद रखो भक्त का हृदय भगवान् का निवासस्थान होता है। यह ठीक है कि वे सभी प्राणियों में वास करते हैं किन्तु भक्त के हृदय में वे स्वयं को विशेष रूप से प्रकट करते हैं। भक्त का हृदय भगवान् का बैठकखाना है।

* इस कलियुग के लिए भक्तियोग ही श्रेयस्कर है। इस मार्ग पर चलने से अन्य मार्गों की अपेक्षा भगवान् के पास सरलता से पहुँचा जाता है। ज्ञान और कर्म के मार्ग से भगवान् के समीप निःसन्देह पहुँचा जा सकता है, किन्तु वे मार्ग हैं बड़े कठिन।

* भक्तियोग क्या है? यह है भगवान् का नामकीर्तन तथा गुणगान करते हुए मन को भगवान् की ओर लगाये रहना। सादे शीशे पर फोटो नहीं उतरती, वह केवल मसाला लगाये हुए शीशे पर ही उतरती है, जैसा कि फोटो का काँच। भक्ति ही यह मसाला है।

* विषयसुख के प्रति आसक्ति जितनी कम होती है, भगवान् के प्रति भक्ति उतनी ही बढ़ती जाती है।

* प्रेम-प्रीति तीन प्रकार की होती है - समर्था (स्वार्थहीन), समंजसा (पारस्परिक) और साधारणी (स्वार्थयुक्त)। समर्था प्रीति ही सब से उच्च कोटि की है। इसमें प्रेमी केवल प्रेमास्पद का ही सुख चाहता है, इसके लिए चाहे उसे स्वयं को कष्ट ही क्यों न सहन करना पड़े। समंजसा प्रीति मध्यम कोटि की है। इसमें प्रेमी प्रेमास्पद के सुख के साथ स्वयं के सुख का भी ध्यान रखता है। साधारणी प्रीति सब से निम्न कोटि की है। इसमें प्रेमी केवल अपना ही सुख चाहता है, प्रेमास्पद के सुख-दुःख की कोई परवाह नहीं करता।

* तनिक भी संसारासक्ति के रहते भगवान् के दर्शन नहीं हो सकते। दियासलाई की सींक अगर गीली हो तो हजार घिसने पर भी आग नहीं जलेगी। केवल ढेर भर सींके ही नष्ट होंगी। संसारासक्ति में डूबा मन भीगी सींक के समान है।

* भक्त का बल किसमें निहित है? इसमें कि वह भगवान् का बालक है, और उसकी भक्ति के आँसू ही उसका सब से बड़ा अस्त्र है।

* यदि तुम्हें पागल ही होना है तो संसार की वस्तुओं के लिए पागल क्यों होते हो? पागल होना ही है तो केवल भगवान् के लिए पागल बनो।

* शुद्ध ज्ञान और शुद्ध भक्ति एक ही वस्तु है। दोनों साधक को एक ही लक्ष्य पर पहुँचाते हैं। भक्ति का मार्ग अधिक सरल है।

* ज्ञान मानो पुरुष है और भक्ति नारी है। ज्ञान की गति भगवान् के बैठकखाने तक ही है किन्तु भक्ति उनके अन्तःपुर तक प्रवेश कर सकती है।

* भगवान् का सर्वश्रेष्ठ भक्त कौन है? श्रेष्ठ भक्त वह है जो ब्रह्म का साक्षात्कार कर देखता है कि भगवान् ही समस्त जीव, जगत् एवं चौबीस तत्त्व बने हुए हैं। पहले 'नेति नेति' विचार करते हुए छत पर चढ़ना पड़ता है। तब यह दिखाई देता है कि जिन ईट, चूना, सुरखी आदि वस्तुओं से छत बनी है, उन्ही से सीढ़ियाँ भी बनी हैं। उस समय भक्त स्पष्ट अनुभव करता है कि ब्रह्म ही यह जीव-जगत् आदि बने हैं।

कर्म

* तुम्हारे लिए कर्म का पूर्ण रूप से त्याग कर देना सम्भव नहीं है तुम्हारी इच्छा हो या न हो, तुम्हारा स्वभाव ही तुमसे कर्म करवायेगा। इसीलिए शास्त्र कहते हैं अनासक्त होकर कर्म करो। अनासक्त होकर कर्म करना यानी कर्मफल की आकांक्षा न रखना। इस प्रकार मोहमुक्त भाव से कर्म करने का नाम कर्मयोग है।

* एक भक्त :- हमारे सांसारिक कर्तव्य जैसे अर्थोपार्जन आदि के सम्बन्ध में क्या किया जाय?

श्रीरामकृष्ण :- हाँ, तुम उन्हें किया करो किन्तु उतना ही जितना संसारयात्रा के लिए आवश्यक हो। साथ ही एकान्त में रोते हुए भगवान् से प्रार्थना करनी होगी ताकि ये सब कर्तव्य कर्म तुम निष्काम भाव से कर सको। कर्म करो, किन्तु फल भगवान् को समर्पित कर दो।

* केवल उन्हीं कामों को करो जो तुम्हारे सामने आ पड़े हैं और जिन्हें किये बिना नहीं चल सकता। उन्हें भी निष्काम भाव से करो। जानबूझकर स्वयं को बहुत अधिक कामों में उलझा लेना अच्छा नहीं है। इससे मनुष्य भगवान् को भूल जाता है।

* यह संसार हमारा कर्मक्षेत्र है। यहाँ कुछ कर्तव्य करने के लिए हमारा जन्म हुआ है। जैसे लोगों का निवास देहात में होता है किन्तु वे काम करने के लिए कलकत्ते आते हैं।

* जब हरि, काली अथवा राम का नाम लेते ही आँख से आँसू बहने

लगते हैं तब फिर उसे सन्ध्या, पूजा आदि करने की आवश्यकता नहीं रहती। उसके सभी कर्म अपने आप छूट जाते हैं। कर्मों का फल उस व्यक्ति को स्पर्श नहीं कर पाता।

* परमहंस अवस्था को प्राप्त होने पर सभी कर्म छूट जाते हैं। तब मनुष्य सदा भगवान् का स्मरण-मनन और ध्यान करता रहता है। उसका मन सदा भगवान् से युक्त रहता है। यदि वह कभी कुछ कर्म करता भी है तो वह केवल लोकशिक्षा के लिए ही होता है।

गुरु

* प्रत्येक व्यक्ति गुरु नहीं हो सकता। जब एक बड़ा भारी शहतीर पानी पर तैरता है तो उस पर पशु भी बैठकर आगे निकल जाते हैं। किन्तु एक सड़ियल लकड़ी के टुकड़े पर यदि कौआ भी बैठ जाय तो वह उसको लेकर डूब जाती है। इसलिए प्रत्येक युग में मानवजाति को शिक्षा देने के लिए भगवान् गुरुरूप में अवतीर्ण होते हैं। एकमात्र सच्चिदानन्द ही गुरु हैं।

* यदि कोई ठीक ठीक आन्तरिकता तथा प्राणों की व्याकुलता के साथ भगवान् को पुकार सके तो उसके लिए गुरु की आवश्यकता नहीं होती। किन्तु साधारणतः हृदय की इतनी तीव्र व्याकुलता नहीं दिखाई देती, इसीलिए गुरु की आवश्यकता है।

गुरु एक ही होता है, किन्तु उपगुरु अनेक हो सकते हैं। जिस किसी से कुछ सीखा जाय उसे उपगुरु कहा जा सकता है। अवधूत (भागवत में उल्लिखित एक उच्च कोटि के महात्मा) ने इस प्रकार के चौबीस उपगुरु किये थे।

* यदि तुम्हारे अन्तकरण में भगवान् के प्रति ठीक ठीक अनुराग उत्पन्न हो, उन्हें जानने की स्पृहा उत्पन्न हो तो सद्गुरु से मिला देंगे। तुम्हें सद्गुरु के लिए चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं।

* वैद्य तीन प्रकार के होते हैं - उत्तम, मध्यम और अधम। जो वैद्य रोगी की नाड़ी देखकर और दवा का नुस्खा लिखकर 'दवा खा लेना' कहते हुए चल देते हैं, वे सब से अधम श्रेणी के वैद्य हैं। इसी प्रकार ऐसे अधम श्रेणी के आचार्य भी होते हैं जो केवल उपदेश दे जाते हैं

किन्तु शिष्य उनका पालन करता है या नहीं, उस पर उनका परिणाम अच्छा हुआ या बुरा यह नहीं देखते।

दूसरी श्रेणी के वैद्य वे होते हैं जो दवा देकर रोगी से उसे खाने के लिए कहते हैं। यदि रोगी दवा नहीं लेना चाहता हो वे उसे समझाते बुझाते हैं। ये मध्यम श्रेणी के वैद्य हैं। इसी प्रकार मध्यम श्रेणी के आचार्य भी होते हैं, जो शिष्य को उपदेश देते हैं और उन उपदेशों के अनुसार चलने के लिए उसे नाना प्रकार से समझाते हैं।

उत्तम श्रेणी के वैद्य वे होते हैं जो यदि रोगी मीठी बातों से न माने तो उस पर बल का प्रयोग भी करते हैं। आवश्यक होने पर वे रोगी की छाती पर घुटना रखकर जबरदस्ती उसे दवा पिला देते हैं। इसी प्रकार उत्तम श्रेणी के आचार्य या गुरु वे हैं जो अपने शिष्य के मन को भगवान् की ओर लाने के लिए बलप्रयोग भी करते हैं।

* किन्तु यदि दवा रोगी के मुख से बाहर निकल जाय, उसके पेट तक न पहुँचे तो वैद्य क्या करेगा? ऐसी अवस्था में उत्तम वैद्य भी कुछ नहीं कर सकता।

* किसी नये देश में जाना हो तो ऐसे किसी एक व्यक्ति के निर्देशानुसार ही चलना चाहिए जो वहाँ का रास्ता जानता है। बहुत सारे लोगों से पूछते रहने पर गोलमाल हो जाता है। इसी प्रकार, भगवान् के निकट जाना हो तो उस एक ही गुरु का आदेश मानकर चलना चाहिए, जो उस पथ को भलीभाँति जानता है।

* गुरु के वचन पर विश्वास होना चाहिए। गुरु सच्चिदानन्दस्वरूप हैं। स्वयं भगवान् ही गुरु हैं। यदि तुम गुरुवाक्य पर बालक की भाँति विश्वास करो तो तुम भगवान् को पा जाओगे। बालक का विश्वास कैसा तीव्र होता है। माँ ने कह दिया 'यह तेरा भाई है,' बस

बच्चे को सोलह आना विश्वास हो गया कि 'यह व्यक्ति मेरा भाई है।' फिर भले ही वह ब्राह्मण का लड़का हो और यह व्यक्ति लोहार।

* मोती ले लो और सीपी को फेंक दो। गुरु ने जो मन्त्र दिया उसका जप करने में मग्न हो जाओ। गुरु की मनुष्यसुलभ दुर्बलताओं की ओर मत देखो। कोई तुम्हारे गुरु की निन्दा करता हो तो उसकी बात कभी मत सुनो। गुरु माता-पिता से भी बड़े हैं। यदि कोई तुम्हारे सामने तुम्हारे माता-पिता का अपमान करे तो क्या तुम उसे चुपचाप सुन लोगे? आवश्यक हो तो लड़कर भी गुरु के सन्मान की रक्षा करो।

* विश्वास और श्रद्धा चाहिए। विश्वास में कितनी शक्ति होती है सुनो। एक आदमी को समुद्र पार करके लंका से भारत आना था। विभीषण ने उससे कहा, 'लो, इस चीज को अपने कपड़े के एक छोर में बाँध लो। इसके बल पर तुम सहज ही समुद्र पार हो जाओगे। तुम पानी पर चल सकोगे। किन्तु ध्यान रखो, इसे देखने नहीं जाना कि यह वस्तु है क्या, नहीं तो डूब जाओगे।' निदान वह आदमी पानी पर बड़ी सरलता से चलते हुए आगे बढ़ने लगा - विश्वास में ऐसा ही बल होता है। किन्तु कुछ दूर जाने के बाद उसके मन में कुतूहल हुआ - 'विभीषण ने मुझे ऐसी कौन सी आश्चर्यजनक वस्तु दी है कि जिसके बल पर मैं पानी के ऊपर से चला जा रहा हूँ?' उसने गाँठ खोली और देखा तो उसमें केवल एक पत्ता था जिस पर राम का नाम लिखा था। उसने कहा - 'बस यही!' और तत्काल ही वह डूब गया।

* कहते हैं कि राम के नाम पर विश्वास करके हनुमान एक ही छलाँग में समुद्र को लाँघ गये, किन्तु स्वयं रामचन्द्रजी को समुद्र पार करने के लिए सेतु बाँधना पड़ा।

* सभी गुरु बनना चाहते हैं, किन्तु शिष्य भला कौन बनना चाहता है?

* भगवान् मनुष्य के सामने प्रकट होते हैं और बात करते हैं। तभी मनुष्य को उनका आदेश प्राप्त होता है। ऐसे आदेशप्राप्त गुरु के वाक्यों में अद्भुत शक्ति होती है। वे पहाड़ों को भी हिला देनेवाले होते हैं। कोरे भाषणों से क्या होता है? लोग दो-चार दिन उन्हें सुनते हैं और फिर भूल जाते हैं। लोग कोरे शब्दों को ग्रहण नहीं करते।

* गुरु विशाल गंगाजी के समान हैं। गंगा में लोग सारा कूड़ा-करकट और गंदगी डाल देते हैं, किन्तु उससे उसकी पवित्रता घट नहीं जाती। इसी प्रकार गुरु पर भी तुच्छ निन्दा अपमान आदि का परिणाम नहीं होता। वे इनसे बहुत उपर होते हैं।

* जो आचार्य होता है उसे बहुतसी बातें जाननी होती हैं। दूसरों को मारने के लिए ढाल-तलवार की जरूरत होती है, किन्तु स्वयं को मारने के लिए एक सुई या नहरनी ही पर्याप्त है।

* साधारण जीव दूसरों को शिक्षा देने से घबड़ाते हैं। सड़ियल लकड़ी का टुकड़ा स्वयं किसी तरह पानी पर तैर जाता है, किन्तु यदि उस पर एक चिड़िया भी बैठ जाय तो वह डूब जाता है। नारद आदि ऋषि बड़े भारी शहतीर के समान हैं, जो न केवल स्वयं ही जल पर तैरते हैं वरन् मनुष्य, गाय और हाथी तक को पार ले जा सकते हैं।

गृहस्थ

* अपने सभी कर्तव्य कर्म करो किन्तु मन को भगवान् की ओर लगाये रहो। पत्नी, बच्चे, पिता, माता आदि सब के साथ रहो, सब की सेवा करो। उनसे ऐसा व्यवहार करो मानो वे तुम्हारे अत्यन्त प्रिय हों, किन्तु मन ही मन निश्चित जाने रहो कि वे तुम्हारे कोई नहीं हैं।

* बड़े आदमी के घर की नौकरानी गृहस्थी के सारे काम करती है, किन्तु उसका मन सदा अपने गाँव वाले घर पर ही पड़ा रहता है। वह मालिक के बच्चों को अपने ही बच्चों की तरह पालती-पोसती है और उन्हें 'मेरा राम' या 'मेरा हरि' कहती है। किन्तु मन ही मन वह अच्छी तरह जानती है कि वे कोई उसके अपने नहीं हैं।

* मादा कछुआ पानी में घूमती फिरती है, परन्तु उसका मन कहाँ रहता है? उसका मन पड़ा रहता है किनारे पर जहाँ उसके अण्डे रहते हैं। इसी प्रकार तुम संसार के समस्त काम-काज करो, किन्तु अपना मन सदा भगवान् की ओर लगाये रहो।

* ऊँट कटीली घास खाना बहुत पसन्द करता है। जितना खाता है उतना ही उसके मुँह से धर धर खून निकलता है। फिर भी वह कटीली घास खाते ही रहता है, खाना नहीं छोड़ता। इसी प्रकार संसारी लोग भी संसार में इतना दुःख कष्ट पाते हैं, किन्तु कुछ ही दिन में वह सब भूलकर फिर ज्योंके त्यों हो जाते हैं।

* अपनी श्रद्धा में सदैव दृढ़ एवं अचल रहो, और सारे ढोंग तथा असहिष्णुता का परित्याग करो।

* लुकी-लुकौअल के खेल में यदि तुम ढाई को छू लो तो फिर तुम्हें चोर नहीं बनना पड़ता। पारस पत्थर को छूकर सोना बन जाओ। उसके बाद चाहे तुम हजार वर्ष तक जमीन के अन्दर गड़े रहो, पर जब कभी भी बाहर निकाले जाओगे, सोना ही बने रहोगे।

* मन मानो दूध है और संसार जल। अगर तुम मन को संसार में लगाये रहोगे तो दूध जल के साथ मिल जायगा। इसीलिए लोग दूध को एकान्त में रखकर उसका दही जमाते हैं और फिर उसे मथकर मक्खन निकालते हैं। इस प्रकार एकान्त में साधना करते हुए मनरूपी दूध में से ज्ञान और भक्ति का मक्खन निकाल लो। फिर वह मक्खन संसाररूपी जल में आसानी से रखा जा सकता है। तब वह संसार में मिल नहीं पायेगा। मन संसाररूपी जल से निर्लिप्त रहकर उसके ऊपर तैरता रहेगा।

* कुछ लोगों ने दूध के बारे में सुना है, कुछ ने उसे देखा है और कुछ ने उसका स्वाद चखा है। दूध को देखने पर आनन्द होता है, पर जब तुम उसे पीते हो तो तुम्हें पुष्टि तथा बल मिलता है। इसी प्रकार जब तुम भगवान् के दर्शन पा लोगे तभी तुम्हारे मन में शान्ति आयेगी। और जब तुम उनसे बातचीत कर सकोगे तभी तुम्हें आनन्द का अनुभव होगा तथा शक्ति प्राप्त होगी।

* संसार में बदचलन स्त्री की भाँति रहो। बदचलन स्त्री अपनी घर-गृहस्थी के काम-काज ठीक तरह से करती है, किन्तु उसका मन दिन-रात अपने यार की ओर ही लगा रहता है। इसी प्रकार तुम भी संसार में सब कामकाज करते रहो, किन्तु अपने मन को सदा भगवान् की ओर लगाये रहो।

* संसार में पनडुब्बी की भाँति रहो। पानी उसके शरीर में लगता है

किन्तु वह उसे झटक देती है। कीचड़ में रहनेवाली 'पाँकाल' मछली की भाँति संसार में रहो। यह मछली कीचड़ में रहती तो है पर उसका शरीर सदा स्वच्छ बना रहता है।

* संसार मानो दूध और जल के मिश्रण के जैसा है। उसमें ईश्वरीय आनन्द और विषय दोनों हैं। तुम हंस बनकर दूध-दूध पी लो और पानी छोड़ दो।

* मैं तुम्हें सच बताता हूँ। तुम संसार में रहते हो इसमें कोई हानि नहीं है। किन्तु तुम्हें अपने मन को भगवान् की ओर लगाये रखना चाहिए, अन्यथा तुम सफल नहीं होगे। एक हाथ से संसार के काम करो और दूसरे से भगवान् के चरणों को पकड़े रहो। जब संसार के कामों का अन्त हो जायगा तो दोनों हाथों से भगवान् के चरणों को पकड़ना।

* संसार में आँधी में उड़ती हुई पत्ती की तरह रहो। आँधी उसे जहाँ ले जाती है वहीं वह जाती है - कभी किसी घर के भीतर तो कभी कूड़े के ढेर पर - कभी अच्छी जगह तो कभी बुरी जगह।

* जब भगवान् ने तुम्हें संसार में रखा है तो तुम क्या कर सकते हो? सब कुछ उन्हीं के ऊपर छोड़ दो। उनके चरणों में अपने को समर्पित कर दो। ऐसा करने पर फिर कोई कष्ट नहीं रह जाएगा। तब तुम देखोगे कि सब कुछ भगवान् ही कर रहे हैं। सभी कुछ राम ही की इच्छा पर निर्भर करता है।

जब तुम निर्जन में साधना करो तब परिवार से बिलकुल दूर रहो। उस समय अपनी पत्नी, लड़के, लड़की, माता, पिता, बहिन, भाई, इष्ट मित्र अथवा रिश्तेदारों को भी पास मत आने दो। निर्जन में साधना करते हुए विचार करो, 'संसार में मेरा कोई नहीं है। भगवान्

ही मेरे सर्वस्व हैं।' ज्ञान और भक्ति के लिए रोते हुए भगवान् से प्रार्थना करो।

* यदि तुम कहो कि इस प्रकार परिवार से दूर एकान्त में कितने दिन रहना चाहिए, तो मैं कहूँगा कि इस प्रकार एक दिन भी यदि तुम रह सको तो भी अच्छा है। लगातार तीन दिन रह सको तो और भी अच्छा है।

* संसार में दुर्जनों से स्वयं की रक्षा करने के लिए तमोगुण का प्रदर्शन करना चाहिए। किन्तु कोई हानि पहुँचायेगा इस आशंका से किसी को हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।

* एक या दो सन्तान हो जाने के बाद पति-पत्नी को भाई-बहन की तरह रहना चाहिए और केवल भगवान् के विषय में ही बातचीत करनी चाहिए। ऐसा करने पर दोनों का मन भगवान् की ओर आकर्षित होगा और पत्नी पति के साधनामार्ग में सहायक होगी।

* साधु अथवा देवता के समीप कभी रिक्त-हस्त नहीं जाना चाहिए। जब किसी महापुरुष के पास जाओ तो कुछ न कुछ भेंट - एक छोटा सा फल ही सही - अवश्य ले जाओ।

* गृहस्थ के कर्तव्य हैं प्राणियों के प्रति दया, भक्तों की सेवा और भगवान् के पवित्र नाम का स्मरण-कीर्तन करना।

* रुपये से केवल दाल-रोटी आदि ही प्राप्त हो सकती है। उसे अपना सर्वस्व अथवा एकमात्र ध्येय या साध्य मत समझो।

* जब 'अहं' मर जाता है तब सारे क्लेश मिट जाते हैं। तुम हजार तर्क विचार करो, पर 'अहं' नहीं जाता। हमारे जैसे लोगों के लिए 'मैं भगवान् का भक्त हूँ' यह भाव रखना अच्छा है।

* निरन्तर अभ्यास यही उपाय है। मैंने कामारपुकुर में बढ़ई की स्त्रियों को ढेंकी से चिउड़ा कूटते देखा है। वे एक हाथ से ओखली के भीतर चिउड़ा चलाती रहती हैं, दूसरे हाथ से बच्चे को गोद में लेकर दूध पिलाती जाती हैं और साथ ही ग्राहकों से भाव-ताव भी करती जाती हैं। परन्तु उनका मन सदैव ढेंकी के मूसल की ओर ही रहता है। कहीं हाथ पर गिरकर उँगलियों को कुचल न दे।

* भगवान् को पाने के लिए कुछ अनुकूल बातों की नितान्त आवश्यकता है : साधुसंग, सदसद्विवेक और सद्गुरु-कृपा।

संन्यासी

* जिसने अपना मन, प्राण, अन्तरात्मा पूरी तरह ईश्वर को समर्पित कर दिया है वही सच्चा साधू है। जिसने कामिनी और कांचन का त्याग कर दिया है वही सच्चा साधू है। वह स्त्रियों को अपनी माता की तरह पूज्य दृष्टि से देखता है। वह सदैव भगवान् का चिन्तन करता है और सर्व भूतों में भगवान् विराजमान हैं यह जानकर सब की सेवा करता है।

* जो संसार को पूर्ण रूप से त्याग देता है, और 'कल क्या खाऊँगा, क्या पहनूँगा' इस बात की भी बिलकुल चिन्ता नहीं करता वही ठीक ठीक संन्यासी बनने योग्य है। उसकी मनोवृत्ति उस व्यक्ति के समान होनी चाहिये जो, आवश्यकता होने पर, हाथ-पैर टूट जाने अथवा अपने प्राणों का भय न करते हुए ऊँचे वृक्ष की चोटी से भी बेखटके कूद सकता है।

* वैराग्य कई प्रकार के होते हैं। उनमें से एक होता है 'मर्कट वैराग्य'। कभी कभी संसार के दुःख-कष्ट पाकर मनुष्य के मन में इस प्रकार का झूठा वैराग्य होता है और यह अधिक दिन तक नहीं टिकता। यथार्थ वैराग्य क्या है? संसार में सभी कुछ है, किसी बात का अभाव नहीं है, किन्तु सब कुछ अनित्य, मिथ्या लगता है। यही है यथार्थ वैराग्य।

* एकदम सब कुछ त्याग देना सम्भव नहीं होता। इसके लिए योग्य समय आना चाहिए। परन्तु यह भी सच है कि मनुष्य को उसके विषय में सुनते रहना चाहिए। सदा त्याग-वैराग्य की बात सुनते रहने से सांसारिक विषयों की वासना धीरे-धीरे कम हो जाती है। शराब

का नशा दूर करने के लिए चावल का धोवन थोड़ा-थोड़ा करके पीना चाहिए। इससे धीरे-धीरे स्वाभाविक अवस्था लौट आती है।

* वैराग्य दो प्रकार के होते हैं - तीव्र तथा मन्द। मन्द वैराग्य की प्रक्रिया मन्थर होती है, उसमें आदमी धीमी गति से चलता है। तीव्र वैराग्य छुरे की धार के समान तेज होता है। वह माया के बन्धन को आसानी से और तुरन्त काट देता है।

* जो साधु दवाई देता हो, झाड़-फूँक करता हो, नशा करता हो, रुपया-पैसा लेता हो और माला, तिलक आदि बाह्य चिन्हों के आडम्बर रचते हुए मानो साइनबोर्ड लगाकर अपनी साधुगिरी का प्रदर्शन करता हो, वह सच्चा साधु नहीं है। उसका संग मत करना।

* जब तक मनुष्य मन से सब कुछ त्याग नहीं देता तब तक वह भगवान् को पा नहीं सकता।

* साधु को कभी संचय नहीं करना चाहिए। पंछी और दरवेश कल के लिए व्यवस्था करके नहीं रखते।

* जब किसी को भगवान् के दिव्य प्रेम का नशा चढ़ जाता है तब उसके कौन पिता, कौन माता या कौन पत्नी? तब उसके लिए कोई कर्तव्य शेष नहीं रह जाता। वह सब ऋणों से मुक्त हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य जगत् को भूल जाता है। अपनी देह, जो सब को इतनी प्रिय होती है उस देह तक को भूल जाता है।

* सर्वत्यागी संन्यासी कामिनी और कांचन का कभी स्पर्श तक नहीं करेगा। वह नारी का चित्र तक नहीं देखेगा।

* सच्चा संन्यासी और सच्चा भगवद्-भक्त नारीमात्र को - चाहे वह सती हो अथवा असती - जगदम्बा के ही रूप में देखते हैं।

* पण्डित और साधु पुरुष में एक बड़ा अन्तर है। कोरे पण्डित का मन कामिनी और कांचन पर ही लगा रहता है, किन्तु साधु का मन हरि के चरण-कमलों में लगा रहता है।

आशा की वाणी

* मैं तुमसे कहता हूँ, जो उन्हें चाहता है वह उन्हें पा लेता है। इस बात को अपने जीवन में परखकर देख लो। सच्चे उत्साह के साथ तीन ही दिन तक चेष्टा करो, तुम निश्चित सफल होगे। जिसकी एकाग्रता और व्याकुलता प्रबल होती है वह शीघ्र ही भगवान् को पा लेता है।

* जैसे किसी कमरे का हजार वर्षों का अन्धकार प्रकाश के लाते ही दूर हो जाता है, वैसे जीव के जन्मजन्मातरों के पाप भगवान् की एक कृपादृष्टि से ही नष्ट हो जाते हैं।

* उनकी कृपा की वायु तुम्हारे ऊपर दिन-रात बह रही है। यदि तुम्हें जीवनसमुद्र में शीघ्र आगे बढ़ना हो तो अपनी नौका (मन) के पाल तान दो।

* निरन्तर भगवान् का नाम लेते रहो। भगवन्नाम कलियुग में बड़ा प्रभावशाली है। इस युग में योगाभ्यास करना तो सम्भव नहीं है, क्योंकि मनुष्य के प्राण अन्न पर निर्भर हैं। ताली बजाते हुए भगवान् का नाम-कीर्तन करते रहो। तुम्हारे पाप पक्षियों की भाँति उड़ जायेंगे।

* स्वयं को धूल और कीचड़ में सानना बच्चे का स्वभाव ही होता है किन्तु माँ उसे सब समय गन्दा नहीं रहने देती। वह बीच बीच में उसे धो-पोंछकर साफ कर देती है। इसी प्रकार पाप करना मनुष्य का स्वभाव ही होता है किन्तु उसका पाप करना जितना निश्चित है उससे अधिक यह निश्चित है कि भगवान् उसकी पापमुक्ति के लिए नये

नये उपाय निकालते हैं।

* कहा जाता है कि इस कलियुग में यदि कोई एक दिन और एक रात भगवान् के लिए रोये तो वह उनके दर्शन पा जाता है।

* जिसके पास विश्वास है, उसके पास सबकुछ है, जिसके पास विश्वास नहीं उसके पास कुछ भी नहीं। भगवान् के नाम पर विश्वास हो तो असम्भव सम्भव हो सकता है। विश्वास ही जीवन है और अविश्वास मृत्यु।

* जमींदार चाहे बहुत धनी हो किन्तु जब एक निर्धन किसान प्रेम भरे हृदय से उसके पास कोई छोटी सी भेंट लाता है तो वह बड़ी खुशी से उसे स्वीकार कर लेता है। इसी प्रकार सर्वशक्तिमान होते हुए भी भगवान् सच्चे हृदय से चढ़ायी गयी सामान्य भेंट को भी बड़े ही आनन्द और सन्तोष के साथ स्वीकार करते हैं।

* भगवान् के लिए बड़ों की आज्ञा का उल्लंघन करना पाप नहीं है। भरत ने राम के लिए कैकेयी की आज्ञा का उल्लंघन किया, गोपियों ने कृष्ण के दर्शन के लिए अपने पति के आदेश का उल्लंघन किया और प्रह्लाद ने भगवान् के लिए अपने पिता की आज्ञा का उल्लंघन किया था।

* विश्वास रखो। भगवान् पर भरोसा रखो। फिर तुम्हें स्वयं कुछ नहीं करना पड़ेगा। माँ काली ही तुम्हारे लिए सब कुछ कर देंगी।

* भय किस बात का? भगवान् को दृढ़तापूर्वक पकड़े रहो। संसार काँटो से भरा है तो क्या हुआ? जूते पहन लो और काँटो पर से चलते जाओ। तुम्हें डर किसका?

* यदि तुम स्वयं को भगवान् के चरणों में समर्पित कर दो तो

भगवान् ही तुम्हारे भविष्य के बारे में चिन्ता करेंगे। भगवान् हमारे बिल्कुल अपने हैं। तुम उन पर जोर जबरदस्ती भी कर सकते हो।

* मैं तुमसे कहता हूँ कि यदि तुम मेरी बातों का एक आना भी कार्य रूप में परिणत कर सको तो, तुम्हारी मुक्ति निश्चित है।

प्रार्थना

* भगवान् से प्रार्थना करो, - 'हे प्रभु, अपने करुणापूर्ण मुख से मेरी रक्षा करो। मुझे असत् से सत् की ओर, तम से ज्योती की ओर, मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले चलो।'

* 'हे माँ! यह ले तेरा पुण्य, यह ले तेरा पाप। मुझे अपने चरणकमलों में शुद्धभक्ति दे। यह ले तेरी शुद्धता, यह ले तेरी अशुद्धता। मुझे शुद्धभक्ति दे। यह ले तेरा धर्म, यह ले तेरा अधर्म। मुझे शुद्धभक्ति दे।'

* 'माँ, मुझे केवल यही आशीर्वाद दे कि मैं तन से, मन से तथा वचन से ईश्वर की सेवा कर सकँ, मैं इन आँखों से उनके भक्तों को देखूँ, इस मन से उनका ध्यान करूँ और इस जिह्वा से उनका नामगुणगान करूँ।'

* 'हे माँ, मेरे भीतर से ये विचार नष्ट कर दे कि मैं उच्च जाति का हूँ, मैं ब्राह्मण हूँ और वे लोग नीच जाति के हैं, शूद्र हैं, क्योंकि वे सब विभिन्न रूपों में तेरे अतिरिक्त और हैं क्या?'

* 'हे माँ जगदम्बा, मैं लोकमान्यता नहीं चाहता, देहसुख नहीं चाहता, मेरा मन गंगा-यमुना के प्रवाह की तरह तुझमें मिलकर एक हो जाय। माँ, मैं भक्तिहीन हूँ, योगसाधना नहीं जानता, मैं दीनहीन हूँ, बन्धुहीन हूँ, मैं किसी से प्रशंसा नहीं चाहता। कृपा करके मेरे मन को अपने चरणकमलों में सदा निमग्न रख।'

* 'हे माँ, मैं यन्त्र हूँ, तू यन्त्रचालक। मैं गृह हूँ, तू गृहिणी। मैं रथ हूँ,

तू सारथि। तू मुझे जैसा चलाती है, वैसा मैं चलता हूँ। जैसा कराती है, वैसा मैं करता हूँ। जैसा कहलवाती है, वैसे कहता हूँ। मैं नहीं, मैं नहीं, तू ही, तू ही।'